

यजुर्वेद में यज्ञ परंपरा और उसका वैज्ञानिक दृष्टिकोण: एक विश्लेषणात्मक साहित्यिक शोध-अध्ययन

वीना रानी, सहायक प्राध्यापिका, संस्कृत विभाग, राजकीय महाविद्यालय, हिसार, हरियाणा

सार (Abstract)

यजुर्वेद वैदिक वाङ्मय का वह भाग है जिसमें यज्ञ-कर्म का व्यावहारिक स्वरूप सर्वाधिक सुव्यवस्थित रूप में मिलता है। ऋग्वेद स्तुतियों का, सामवेद गान का और अथर्ववेद लौकिक तथा आभिचारिक विषयों का संकलन है। यजुर्वेद गद्य और पद्य मन्त्रों के माध्यम से यह बताता है कि यज्ञ कैसे किया जाए। यह शोध-पत्र विश्लेषणात्मक साहित्यिक पद्धति से तीन प्रश्नों की पड़ताल करता है:

1. यजुर्वेद में यज्ञ की अवधारणा और संरचना क्या है?
2. उसके दार्शनिक और नैतिक आयाम क्या हैं?
3. आधुनिक विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों (गणित-ज्यामिति, खगोल, पर्यावरण, ध्वनि-विज्ञान, स्मृति-विज्ञान और भाषा-विज्ञान) के साथ इसका सम्बन्ध किस सीमा तक प्रमाणित किया जा सकता है?

अध्ययन में शुक्ल और कृष्ण यजुर्वेद की संहिताओं, ब्राह्मण-ग्रन्थों, श्रौतसूत्र-परम्परा, शुल्बसूत्रों और 1882 से 2022 के बीच के हिन्दी, संस्कृत तथा अंग्रेजी शोध-साहित्य का समीक्षात्मक उपयोग किया गया है। निष्कर्ष यह है कि यजुर्वेदीय यज्ञ का सर्वाधिक ठोस "वैज्ञानिक" योगदान वेदी-निर्माण की ज्यामितीय पद्धति और मौखिक परम्परा की अद्भुत स्मृति-तकनीक में दिखता है। पर्यावरणीय और स्वास्थ्य-सम्बन्धी दावों के लिए प्रारम्भिक प्रयोगात्मक संकेत हैं, पर उन्हें अभी और कठोर परीक्षण की आवश्यकता है। सबसे संतुलित दृष्टि यह है कि यज्ञ को न केवल अन्धविश्वास कहकर खारिज किया जाए और न ही उसे आधुनिक विज्ञान का पूर्व-रूप मानकर अतिरंजित किया जाए। उसे एक विकसित अनुष्ठानिक-ज्ञान-व्यवस्था के रूप में समझना अधिक उपयुक्त है।

कुंजी शब्द: यजुर्वेद, यज्ञ, अध्वर्यु, शुल्बसूत्र, अग्निचयन, वैदिक ज्यामिति, मन्त्र-विज्ञान, अनुष्ठान-सिद्धान्त

1. प्रस्तावना

भारतीय सांस्कृतिक चेतना की सबसे प्राचीन संगठित अभिव्यक्ति वेदों में मिलती है। वैदिक संहिताओं की रचना का कालक्रम विद्वानों में विवादित है, किन्तु भाषिक और साहित्यिक आधार पर ऋग्वेद के पश्चात यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद की संहिताओं का संकलन माना जाता है [1,2]। परम्परा में यज्ञ को "वेदों का व्यावहारिक रूप" कहा जाता है। बलदेव उपाध्याय ने वैदिक साहित्य के अपने विवेचन में स्पष्ट किया है कि वेदों का सम्पूर्ण अध्ययन यज्ञ-प्रक्रिया के सन्दर्भ के बिना अधूरा रहता है [3]।

यजुर्वेद का नाम ही यज्ञ से जुड़ा है। "यजुष्" शब्द उन मन्त्रों के लिए प्रयुक्त होता है जो यज्ञ-कर्म के समय बोले जाते हैं। मीमांसा-परम्परा में जैमिनि ने ऋक् और साम से भिन्न मन्त्र-प्रकार के लिए यजुः की परिभाषा दी। उसका आशय यह है कि जो न पद्यबद्ध ऋचा है और न गेय साम है, वह यजुः है। इस प्रकार यजुर्वेद कर्मकाण्ड का हस्तलेख जैसा है, और अध्वर्यु उसका मुख्य प्रयोक्ता है।

बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में यजुर्वेदीय यज्ञ-अध्ययन में तीन नई धाराएँ जुड़ीं:

- पहली धारा भाषाशास्त्रीय और अनुवाद-परक थी। ग्रिफिथ ने शुक्ल यजुर्वेद का अंग्रेजी अनुवाद किया [4], कीथ ने तैत्तिरीय संहिता का [5], और वेबर ने महीधर-भाष्य सहित वाजसनेयि संहिता का सम्पादन किया [6]। इस धारा से पाठ-सुलभता बनी।
- दूसरी धारा धर्मशास्त्र और अनुष्ठान-इतिहास की थी, जिसका उदाहरण पांडुरंग वामन काणे का कार्य है [7]।
- तीसरी धारा अनुष्ठान की संरचना, गणित और ज्ञान-विज्ञान के दृष्टिकोण से उसे परखने की थी। फ्रिट्स स्टाल का 1975 में केरल के पंजाल गाँव में अग्निचयन का प्रत्यक्ष प्रलेखन और उस पर आधारित ग्रन्थ इसका उल्लेखनीय उदाहरण है [8]। अब्राहम सीडेनबर्ग ने यज्ञीय वेदी-निर्माण से ज्यामिति के उद्भव का सिद्धान्त रखा [9], जबकि भिभूतिभूषण दत्त ने शुल्बसूत्रों का गणितीय अध्ययन प्रस्तुत किया [10]।

इन सबके बावजूद हिन्दी अकादमिक जगत में यह विषय प्रायः दो अतियों में देखा जाता है। एक ओर यज्ञ को आधुनिक विज्ञान के हर आविष्कार का पूर्वरूप घोषित करने वाली भावुकता है, दूसरी ओर उसे केवल पुरोहित-कर्मकाण्ड कहकर ज्ञान-मूल्य से रहित मानने वाला अनुदार दृष्टिकोण। यह शोध-पत्र इन दोनों के बीच एक साक्ष्य-आधारित, स्रोत-निष्ठ मार्ग प्रस्तुत करने का प्रयास है।

2. शोध-समस्या, उद्देश्य और पद्धति

2.1 शोध-समस्या

यजुर्वेद में वर्णित यज्ञ-परम्परा किस सीमा तक केवल धार्मिक कर्मकाण्ड है और किस सीमा तक उसमें ऐसे तत्त्व निहित हैं जिन्हें आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान-क्षेत्रों के सन्दर्भ में विश्लेषित किया जा सकता है?

2.2 उद्देश्य

1. यजुर्वेद की संहिताओं में यज्ञ की अवधारणा, प्रकार और प्रक्रिया का साहित्यिक विश्लेषण करना।
2. यज्ञ के दार्शनिक-नैतिक आधारों की पहचान करना।
3. गणित, खगोल, पर्यावरण, ध्वनि-मनोविज्ञान और भाषा-विज्ञान से जुड़े शोध-निष्कर्षों की समीक्षा करना।
4. तुलनात्मक दृष्टि से अन्य प्राचीन बलि/यज्ञ-परम्पराओं (ईरानी, यूनानी, इब्रानी) से यजुर्वेदीय यज्ञ की समानताएँ और भिन्नताएँ रेखांकित करना।
5. अलग-अलग विद्वत्-दृष्टिकोणों का विश्लेषण कर प्रामाणिक निष्कर्ष तक पहुँचना।

2.3 पद्धति

अध्ययन विश्लेषणात्मक साहित्यिक शोध-पद्धति पर आधारित है। इसमें प्राथमिक स्रोतों (संहिता-मन्त्र, ब्राह्मण, श्रौतसूत्र, शुल्बसूत्र) का पाठ-विश्लेषण किया गया है और द्वितीयक स्रोतों (शोध-ग्रन्थ, शोध-लेख, अनुवाद, भाष्य) की समीक्षा करके उनके निष्कर्षों की तुलना की गई है। स्रोतों के चयन में यह ध्यान रखा गया है कि 2023 से पूर्व प्रकाशित और शैक्षणिक रूप से मान्य कृतियाँ ही ली जाएँ। सन्दर्भ-पद्धति वैकूवर (क्रमांक-आधारित) है और प्रत्येक सन्दर्भ पहली बार आने के क्रम में संख्यांकित है। मन्त्रों के उद्धरण संहिता के अध्याय और मन्त्र-संख्या के साथ दिए गए हैं, और उन मन्त्र-स्थलों के अर्थ-निर्धारण में उपर्युक्त भाष्यों तथा अनुवादों की तुलना की गई है।

3. यजुर्वेद का स्वरूप और शाखा-परम्परा

3.1 शुक्ल और कृष्ण भेद

यजुर्वेद की दो प्रधान धाराएँ हैं: शुक्ल यजुर्वेद (वाजसनेयि संहिता) और कृष्ण यजुर्वेद (तैत्तिरीय, मैत्रायणी, काठक और कपिष्ठल-कठ संहिताएँ)। मूल भेद यह है कि कृष्ण यजुर्वेद में मन्त्रभाग और ब्राह्मणभाग (व्याख्यात्मक गद्य) एक ही संहिता में मिश्रित हैं, जबकि शुक्ल यजुर्वेद में मन्त्रों को अलग रखा गया है और ब्राह्मण-भाग शतपथ ब्राह्मण के रूप में पृथक् है [1,5]। इसी "स्वच्छता" के कारण उसे "शुक्ल" कहा गया, ऐसी पारम्परिक मान्यता प्रचलित है।

शुक्ल यजुर्वेद की दो प्रमुख शाखाएँ हैं, माध्यन्दिन और काण्व। माध्यन्दिन-संहिता उत्तर भारत में अधिक प्रचलित है, जबकि काण्व-संहिता महाराष्ट्र और दक्षिण के कुछ क्षेत्रों में। वेबर के सम्पादन में दोनों पाठों का तुलनात्मक विवरण उपलब्ध है [6]। पतंजलि के महाभाष्य में "एकशतमध्वर्युशाखाः" कहकर अध्वर्यु-शाखाओं की एक सौ एक संख्या का उल्लेख मिलता है, जो यजुर्वेद की विशाल पाठ-परम्परा का संकेत है, यद्यपि आज उसकी अल्प शाखाएँ ही जीवित हैं।

3.2 माध्यन्दिन संहिता की अध्याय-रचना

माध्यन्दिन वाजसनेयि संहिता में चालीस अध्याय हैं। पारम्परिक-आधुनिक दोनों विवेचनों में इनका विषय-विभाजन इस प्रकार माना जाता है [3,4]:

- अध्याय 1-2: दर्श-पौर्णमास इष्टि (अमावस्या-पूर्णिमा के यज्ञ)।
- अध्याय 3: अग्न्याधान और अग्निहोत्र सम्बन्धी मन्त्र।
- अध्याय 4-8: सोमयाग (अग्निष्टोम आदि)।
- अध्याय 9-10: वाजपेय और राजसूय।
- अध्याय 11-18: अग्निचयन (वेदी-निर्माण और अग्नि-स्थापन)।
- अध्याय 19-21: सौत्रामणी।
- अध्याय 22-25: अश्वमेध।
- अध्याय 26-29: खिल (पूरक) मन्त्र।
- अध्याय 30-31: पुरुषमेध (पुरुषसूक्त सहित)।
- अध्याय 32-34: सर्वमेध तथा शिवसंकल्प-सूक्त।
- अध्याय 35: पितृमेध।
- अध्याय 36-39: शान्तिपाठ और प्रवर्ग्य।
- अध्याय 40: ईशावास्योपनिषद्।

यह रचना अपने आप में महत्वपूर्ण है। संहिता का आरम्भ सामान्य पार्थिव अनुष्ठान से होता है और अन्त एक अद्वैत-वेदान्तीय उपनिषद् में। अर्थात् कर्म से ज्ञान की ओर एक क्रमिक यात्रा संहिता की संरचना में ही निहित है।

3.3 भाष्य-परम्परा

यजुर्वेद की व्याख्या-परम्परा अत्यन्त समृद्ध है। उव्वट और महीधर के भाष्य याज्ञिक अर्थ पर बल देते हैं, अर्थात् प्रत्येक मन्त्र का विनियोग यज्ञ-कर्म में। महीधर का "वेददीप" इस दृष्टि से प्रमुख है [6]। इसके विपरीत, आर्यसमाज के प्रवर्तक दयानन्द सरस्वती ने

वेदभाष्य में याज्ञिक कर्मकाण्ड के साथ-साथ आध्यात्मिक, सामाजिक और लौकिक अर्थ को महत्त्व दिया और मन्त्रों का बहुआयामी अर्थ प्रस्तुत किया [23]। हिन्दी में श्रीपाद दामोदर सातवळेकर का यजुर्वेद-भाष्य विशेष उल्लेखनीय है, जिसमें सरल हिन्दी टीका के साथ अनेक मन्त्रों की वैज्ञानिक-व्यावहारिक संगति भी सुझाई गई है [11]। भाष्यों का यह वैविध्य हमारे विश्लेषण के लिए आवश्यक है, क्योंकि "वैज्ञानिक दृष्टिकोण" का प्रश्न अनेक बार इसी पर टिका है कि मन्त्र का अर्थ किस भाष्य-परम्परा में लिया जा रहा है।

3.4 कालक्रम और भौगोलिक सन्दर्भ

माइकल विट्जेल के अनुसार वैदिक साहित्य का विकास पंजाब से कुरु-पांचाल प्रदेश तक हुआ। यजुर्वेद की संहिताएँ कुरु-पांचाल के अनुष्ठानिक विकास को दर्शाती हैं [12]। इसी क्षेत्र में यज्ञ-प्रक्रिया बहुत जटिल हुई और पुरोहित-वर्ग अधिक विशेषीकृत हुआ। वैदिक इण्डेक्स (मैकडोनेल और कीथ) यजुर्वेदीय शब्दावली की सामाजिक-भौगोलिक पहचान के लिए आज भी एक आधार-ग्रन्थ है [13]।

4. यज्ञ की अवधारणा: व्युत्पत्ति, स्वरूप और प्रयोजन

4.1 व्युत्पत्ति

"यज्ञ" शब्द "यज्" धातु से बना है, जिसका पाणिनीय धातुपाठ में अर्थ है देवपूजा, संगतिकरण और दान। ये तीनों अर्थ यज्ञ के तीन आयाम व्यक्त करते हैं:

- **देवपूजा:** प्राकृतिक और दिव्य शक्तियों के प्रति कृतज्ञता।
- **संगतिकरण:** संघटन, मेल-मिलाप, अर्थात् पुरोहित, यजमान, समाज और प्रकृति का सहकार।
- **दान:** त्याग और वितरण।

इस त्रिविध अर्थ से स्पष्ट है कि यज्ञ केवल अग्नि में आहुति डालने का नाम नहीं, बल्कि एक सामाजिक-नैतिक क्रिया-व्यवस्था है।

4.2 यजुर्वेद में यज्ञ की केन्द्रीयता

यजुर्वेद यज्ञ को ब्रह्माण्ड के केन्द्र में रखता है। माध्यन्दिन संहिता (23.62) का यह मन्त्रांश उल्लेखनीय है: "इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्या अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः"। इसका आशय है कि यह वेदी पृथ्वी की अन्तिम सीमा है और यह यज्ञ भुवन (लोक) की नाभि है। यहाँ यज्ञ को सृष्टि का केन्द्र-बिन्दु कहकर उसके प्रतीकात्मक महत्त्व को रेखांकित किया गया है।

पुरुषसूक्त (वा.सं. 31.16) में सृष्टि की उत्पत्ति ही एक यज्ञ के रूप में वर्णित है: "यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्"। देवों ने यज्ञ से यज्ञ का यजन किया, और वही प्रथम धर्म हुए। यहाँ यज्ञ आदिम सृजन-प्रक्रिया का मॉडल है, और मानवीय यज्ञ उसका अनुकरण। यह "अनुकरणात्मक ब्रह्माण्डीय दृष्टि" हबर्ट और मॉस के बलि-सिद्धान्त से भी मेल खाती है, जिसमें बलि को मनुष्य और दिव्य जगत के बीच संचार का सेतु माना गया है [20]।

शतपथ ब्राह्मण का प्रसिद्ध कथन "यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म" (1.7.1.5) भी इसी परम्परा की पुष्टि करता है। एगेलिंग द्वारा अनूदित शतपथ ब्राह्मण इस समग्र विवेचन का प्रमुख स्रोत है [14]। ब्राह्मण-ग्रन्थों में यज्ञ के लिए एक विस्तृत व्याख्यात्मक तन्त्र मिलता है, जिसका विश्लेषण थिते ने अपनी कृति में किया है [15]।

4.3 यज्ञ का वैचारिक तन्त्र: देव, हवि, ऋत्विज्

यजुर्वेदीय यज्ञ में चार मुख्य पुरोहित-वर्ग माने गए हैं:

- **होता:** ऋग्वेद के मन्त्रों से देवों का आह्वान।
- **अध्वर्यु:** यजुर्वेद के मन्त्रों से क्रिया-सम्पादन (वेदी, पात्र, हवि, आहुति)।
- **उद्गाता:** सामवेद के गान।
- **ब्रह्मा:** समग्र यज्ञ का निरीक्षक, जो त्रुटि होने पर प्रायश्चित्त निर्धारित करता है।

इसमें अध्वर्यु की भूमिका सर्वाधिक क्रियात्मक है, इसीलिए यजुर्वेद को "अध्वर्यु-वेद" भी कहा जाता है। यह प्रकार्यात्मक विभाजन आधुनिक "श्रम-विभाजन" और "प्रोटोकॉल-आधारित प्रक्रिया-प्रबन्धन" जैसा प्रतीत होता है। किन्तु इसे उसी अर्थ में आधुनिक प्रबन्धन का पूर्वरूप कहना कालानुक्रमिक अतिरंजना होगी। ठीक यही सावधानी उन सभी तुलनाओं में आवश्यक है जो हम आगे करेंगे।

4.4 स्वाहा और "इदं न मम" का दर्शन

यज्ञ की प्रत्येक आहुति के साथ "स्वाहा" और "इदं न मम" (यह मेरा नहीं है) का उच्चारण होता है। यह त्याग का मनोवैज्ञानिक-नैतिक अभ्यास है। यजमान अपनी सम्पत्ति (घृत, अन्न, समिधा) को व्यक्तिगत स्वामित्व से मुक्त कर सार्वजनिक या दिव्य प्रयोजन को समर्पित करता है। हुबर्ट और मॉस के अनुसार बलि का सार ही "पवित्रीकरण और त्याग" है, जिसके द्वारा बलिदाता स्वयं एक नैतिक रूपान्तरण से गुजरता है [20]।

5. यजुर्वेद में यज्ञ के प्रमुख प्रकार और प्रक्रिया

5.1 अग्निहोत्र

अग्निहोत्र यजुर्वेदीय यज्ञ का सबसे सरल और नित्य रूप है। प्रातः और सायं अग्नि में दुग्ध या घृत की आहुति दी जाती है। वा.सं. 3.9 में मन्त्र आता है: "अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा"। सूर्यास्त के समय अग्नि को ज्योति और प्रातः सूर्य को ज्योति कहकर दोनों के बीच एक सतत प्रकाश-चक्र स्थापित किया गया है। बोडेविट्ज़ ने अपने शोध में ब्राह्मणों के आधार पर अग्निहोत्र के विवरण का पाठ-विश्लेषण किया है, जिसके अनुसार इस अनुष्ठान में समय-निर्धारण (सूर्योदय-सूर्यास्त) का अत्यन्त कठोर नियम है [16]। यह दैनिक अनुष्ठान प्रकृति के दैनिक चक्र के साथ मानव-जीवन को जोड़ने का प्रयास है।

5.2 दर्श-पौर्णमास

अमावस्या और पूर्णिमा को किया जाने वाला यह इष्टि-यज्ञ चन्द्र-कालगणना से प्रत्यक्ष जुड़ा है। यजुर्वेद के आरम्भिक मन्त्र (1.1) इसी यज्ञ के सन्दर्भ में आते हैं: "इषे त्वोर्जे त्वा वायवस्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणे"। इस मन्त्र में "श्रेष्ठतमाय कर्मणे" (सर्वोत्तम कर्म के लिए) कहकर यज्ञ को ही श्रेष्ठतम कर्म बताया गया है। इसमें अन्न (इष) और शक्ति (ऊर्ज) की कामना भी स्पष्ट है। कृषि-आधारित समाज के लिए यह स्वाभाविक था। गोंडा ने अपने वृहद अध्ययन में यह दर्शाया है कि इन नित्य-नैमित्तिक अनुष्ठानों का सम्बन्ध जीवन-चक्र और ऋतु-चक्र से है [17]।

5.3 सोमयाग

सोमयाग यजुर्वेद के अध्याय 4 से 8 में वर्णित है और अग्निष्टोम इसका आधारभूत रूप है। इसमें सोम-लता का रस निकालकर देवताओं को अर्पित किया जाता है। सोम की पहचान एक विवादित प्रश्न है। कुछ विद्वान इसे एफेड्रा, कुछ किसी अन्य पादप से जोड़ते हैं, पर सर्वसम्मति नहीं है। जैमिंसन और ब्रेटन के ऋग्वेद-अनुवाद की भूमिका इस विवाद का संक्षिप्त और सन्तुलित विवरण देती है [43]। यह बिन्दु स्मरण कराता है कि वैदिक शब्दों को आधुनिक जैव-रासायनिक पहचान से जोड़ते समय सतर्कता आवश्यक है।

5.4 राजसूय और वाजपेय

राजसूय राजा के अभिषेक का यज्ञ है और वाजपेय शक्ति-वर्धन तथा सार्वभौम पद की प्रतिष्ठा का। इन यज्ञों के मन्त्र (अध्याय 9-10) राजनीतिक विचार का भी स्रोत हैं। वा.सं. 9.23 में आता है: "वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः"। इसका आशय है कि हम पुरोहित लोग राष्ट्रे में जागृत रहें। इसे प्रायः राष्ट्र-चेतना का प्राचीन सूत्र माना जाता है। ऐतिहासिक दृष्टि से इसे उस समय की राजा-पुरोहित की सहयोगी शासन-प्रणाली की अभिव्यक्ति के रूप में पढ़ना अधिक वस्तुनिष्ठ है, न कि आधुनिक राष्ट्र-राज्य की धारणा के रूप में।

5.5 अग्निचयन

अग्निचयन यजुर्वेदीय यज्ञ का सर्वाधिक जटिल भाग है। इसमें ईंटों की वेदी का निर्माण होता है, जो प्रायः श्येनचिति (बाज के आकार की वेदी) के रूप में बनाई जाती है। अध्याय 11 से 18 इसी से सम्बद्ध हैं। परम्परा के अनुसार वेदी की ईंटों की संख्या और स्तर-विन्यास का सम्बन्ध वर्ष के दिनों, मुहूर्तों और ऋतुओं के प्रतीकों से है। स्टाल ने 1975 के पंजाल-यज्ञ के अपने प्रत्यक्ष-अध्ययन में इस पूरी प्रक्रिया का दस्तावेजीकरण किया, और यह विशेष रूप से रेखांकित किया कि इसमें ज्यामितीय गणना और संरचनात्मक नियमों की उच्च सटीकता है [8]। यही वह क्षेत्र है जहाँ यज्ञ और विज्ञान का सम्बन्ध सबसे ठोस रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है, जिसकी चर्चा अगले खण्ड में की गई है।

5.6 अश्वमेध और पुरुषमेध

अश्वमेध (अध्याय 22-25) राजकीय प्रभुत्व का प्रतीकात्मक यज्ञ है। पुरुषमेध (अध्याय 30-31) को अनेक विद्वान वास्तविक नरबलि नहीं, बल्कि प्रतीकात्मक या सांस्कृतिक रूप से रूपान्तरित अनुष्ठान मानते हैं। यह बात ब्राह्मण-ग्रन्थों के अध्ययन से भी समर्थित होती है [14,15]। इस सन्दर्भ में रेने जिरार्ड का बलि-हिंसा सम्बन्धी सिद्धान्त तुलनात्मक दृष्टि से रोचक है, जिसके अनुसार बलि-प्रथाएँ समाज की आन्तरिक हिंसा को नियन्त्रित करने का साधन बनती हैं [42]। यजुर्वेदीय सन्दर्भ में पशु-हिंसा और अहिंसा के तनाव पर विद्वानों में मतभेद है, जिस पर बाद के खण्डों में विचार किया गया है।

6. यज्ञ का दार्शनिक और नैतिक आयाम

6.1 ऋण-सिद्धान्त और कर्म-चक्र

भगवद्गीता (3.14) का प्रसिद्ध कथन "अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः। यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः" यज्ञ को एक पारिस्थितिक चक्र में स्थापित करता है, जिसमें अन्न से प्राणी, वर्षा से अन्न, यज्ञ से वर्षा और कर्म से यज्ञ उत्पन्न होते हैं। यद्यपि गीता यजुर्वेद से बाद की है, यह चक्र-दृष्टि वैदिक विचारधारा का ही परिष्कृत रूप है। यहाँ "यज्ञ" शब्द का अर्थ कर्मकाण्ड से विस्तृत होकर सामूहिक लोक-कल्याणकारी कर्म तक चला गया है।

6.2 ईशावास्यः कर्म और त्याग का समन्वय

यजुर्वेद का अन्तिम अध्याय (40) ईशावास्योपनिषद् है। उसका प्रथम मन्त्र है: "ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्। तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्।" इसका भाव है कि सम्पूर्ण जगत् ईश्वर से आच्छादित है, इसलिए त्याग-पूर्वक भोग करो और किसी के धन का लोभ मत करो। दूसरा मन्त्र "कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।" कर्म-निरत जीवन का समर्थन करता है। यज्ञ के "इदं न मम" (यह मेरा नहीं) और ईशावास्य के "तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः" में अद्भुत वैचारिक एकता है। दोनों में स्वामित्व का त्याग करके संसाधनों का साझा उपभोग नैतिकता का आधार है। श्री अरविन्द ने वेद-अध्ययन में यज्ञ को आन्तरिक आध्यात्मिक प्रक्रिया के प्रतीक के रूप में पढ़ने का पक्ष रखा, जिसमें बाह्य आहुति आन्तरिक चेतना के रूपान्तरण का सांकेतिक रूप है [24]।

6.3 शान्तिपाठ और ब्रह्माण्डीय सामंजस्य

वा.सं. 36.17 का शान्तिपाठ, "द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वं शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि", आकाश, अन्तरिक्ष, पृथ्वी, जल, औषधि और वनस्पति सबके लिए शान्ति की कामना करता है। यह मन्त्र वैदिक चिन्तन में "पर्यावरणीय समग्रता" का संकेत देता है, जिसमें मानवीय शान्ति को प्राकृतिक घटकों की शान्ति से पृथक् नहीं देखा गया।

इसी अध्याय (36.18) में एक और प्रसिद्ध मन्त्र आता है: "मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्। मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।" इसका भाव है कि सब प्राणी मुझे मित्र की दृष्टि से देखें और मैं भी सब प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखूँ। यह सार्वभौम मैत्री-भाव का सूत्र है, जो यज्ञ के नैतिक उद्देश्य को स्पष्ट करता है।

6.4 शिवसंकल्पः मन का दर्शन

अध्याय 34 के प्रथम सूक्त (शिवसंकल्प) में मन का सुन्दर वर्णन है: "यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवेति। दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।" जो जागते हुए दूर तक जाता है और सोते हुए भी वैसे ही जाता है, प्रकाशों का एक ज्योति-स्वरूप वह मन शुभ-संकल्पयुक्त हो। यह अंश भारतीय मनोविज्ञान का प्रारम्भिक स्रोत माना जा सकता है, और यह दर्शाता है कि यजुर्वेद में यज्ञ केवल बाह्य कर्म नहीं, मन की शुद्धि से भी जुड़ा है।

6.5 आयुर्यज्ञेन कल्पताम्

वा.सं. 18.29 में मन्त्र है: "आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां चक्षुर्यज्ञेन कल्पतां श्रोत्रं यज्ञेन कल्पतां..."। आयु, प्राण, चक्षु, श्रोत्र, वाक्, मन और आत्मा सब यज्ञ से सामर्थ्ययुक्त हों। यहाँ यज्ञ को मानव-जीवन की समग्र क्षमताओं से जोड़ा गया है। स्वस्थ जीवन की यह कामना आगे "वैज्ञानिक" व्याख्याओं का प्रवेश-द्वार बनती है, किन्तु पाठ-निष्ठ पद्धति में इसे मूलतः कामनात्मक-प्रार्थनात्मक अभिव्यक्ति के रूप में पढ़ना उचित होगा।

7. यज्ञ का वैज्ञानिक दृष्टिकोण: विभिन्न क्षेत्रों में विश्लेषण

विज्ञान से यज्ञ के सम्बन्ध पर विचार करते समय दो प्रश्न अलग-अलग रखने होंगे। पहला यह कि क्या यजुर्वेदीय यज्ञ में कोई ज्ञान-प्रणाली (जैसे ज्यामिति, कालगणना) निहित थी जिसका इतिहास लिखा जा सकता है? दूसरा यह कि क्या यज्ञ की क्रियाओं के भौतिक, रासायनिक या मनोवैज्ञानिक प्रभाव आधुनिक प्रयोगों से सिद्ध होते हैं? पहले प्रश्न के लिए साहित्यिक-ऐतिहासिक साक्ष्य अधिक सुदृढ़ है, दूसरे के लिए प्रयोगात्मक साक्ष्य अपेक्षाकृत सीमित है।

7.1 ज्यामिति और गणित: वेदी-निर्माण की तकनीक

(क) **शुल्बसूत्र और यजुर्वेद का सम्बन्ध।** यज्ञ-वेदियों के निर्माण के नियम शुल्बसूत्रों में मिलते हैं, जो कृष्ण-यजुर्वेदीय श्रौतसूत्रों (बौधायन, आपस्तम्ब, मानव) और शुक्ल-यजुर्वेदीय कात्यायन श्रौतसूत्र के अंग हैं। "शुल्ब" का अर्थ रज्जु (नापने की डोरी) है। थीबो ने 1875 में इन सूत्रों का पहला व्यवस्थित आधुनिक अध्ययन प्रस्तुत किया [28], और दत्त ने बीसवीं सदी के आरम्भ में उसे गणितीय दृष्टि से विस्तार दिया [10]। सेन और बाग द्वारा किया गया समीक्षात्मक संस्करण और अनुवाद इस क्षेत्र का मानक कार्य है [27]।

(ख) **कर्ण-सिद्धान्त (पाइथागोरस प्रमेय का वैदिक रूप)।** बौधायन शुल्बसूत्र में यह कथन मिलता है: "दीर्घचतुरस्रस्याक्षया रज्जुः पार्श्वमानी तिर्यङ्मानी च यत्पृथग्भूते कुरुतस्तदुभयं करोति" (1.48)। अर्थात् आयत की विकर्ण-रज्जु उतना ही क्षेत्रफल उत्पन्न करती है जितना उसकी लम्बाई और चौड़ाई की भुजाएँ अलग-अलग करती हैं। यह वस्तुतः वही सम्बन्ध है जिसे आज पाइथागोरस प्रमेय कहा जाता है। सेन और बाग के सम्पादन के अनुसार यह कथन शुल्बसूत्रों में स्पष्ट रूप में विद्यमान है [27]। यह भी ध्यान देने योग्य है कि यह सम्बन्ध प्रमेय के रूप में सिद्ध नहीं दिया गया, बल्कि निर्माण-नियम के रूप में प्रस्तुत है। इस भेद का उल्लेख स्टाल ने अपने तुलनात्मक अध्ययन में किया है, जिसमें उन्होंने यूनानी और वैदिक ज्यामिति की प्रकृति भिन्न बताई: एक अनुमेय-प्रमाण-केन्द्रित, दूसरी रचना और निर्माण-केन्द्रित [30]।

(ग) **$\sqrt{2}$ का सन्निकट मान।** बौधायन शुल्बसूत्र (1.61) में "प्रमाणं तृतीयेन वर्धयेत् तच्चतुर्थेनात्मचतुस्त्रिंशोनेन सविशेषः" के द्वारा $\sqrt{2}$ का अत्यन्त सटीक सन्निकट मान दिया गया है: $1 + 1/3 + 1/(3 \times 4) - 1/(3 \times 4 \times 34) = 577/408 \approx 1.414216$ । आधुनिक मान 1.414214 से इसका अन्तर केवल लगभग 0.000002 है [10,27]। यह गणनात्मक कौशल यज्ञीय वेदी के अनुपात में शुद्धता की आवश्यकता से प्रेरित प्रतीत होता है।

(घ) **क्षेत्र-रूपान्तरण।** शुल्बसूत्रों में एक आकृति को उसी क्षेत्रफल की दूसरी आकृति में बदलने की विधियाँ मिलती हैं, जैसे वृत्त का वर्ग में और वर्ग का आयत में रूपान्तरण। अग्निचयन में श्येनचिति की वेदी का क्षेत्रफल सात और आधे पुरुष-माप के बराबर रखा जाता है, और जब वेदी को अगले स्तर पर बढ़ाना हो तो आकृति बदलते हुए भी क्षेत्रफल स्थिर रखना पड़ता है। यही बाध्यता ज्यामितीय समस्याओं को जन्म देती है, जिसका सीडेनबर्ग ने विश्लेषण किया [9,29]।

(ङ) **सीडेनबर्ग की परिकल्पना और उस पर विमर्श।** सीडेनबर्ग ने 1962 और 1978 के अपने लेखों में यह मत रखा कि ज्यामिति का मूल कर्मकाण्डीय है, और प्राचीन मिस्र, बेबीलोन, भारत और यूनान की ज्यामिति में समान अनुष्ठानिक जड़ें थीं [9,29]। इस व्यापक "एकल-स्रोत" परिकल्पना को अनेक इतिहासकारों ने अतिरंजित माना है। फिर भी, यजुर्वेदीय परम्परा के सन्दर्भ में यह निर्विवाद है कि वेदी-निर्माण की आवश्यकता से ही अनेक गणितीय विधियाँ विकसित हुईं [10,27]।

(च) **आकलन।** इस क्षेत्र में साक्ष्य पाठगत और सुदृढ़ है। किन्तु यह कहना कि यजुर्वेद स्वयं पाइथागोरस प्रमेय का स्रोत है, अशुद्ध होगा, क्योंकि शुल्बसूत्र संहिता से बाद के सूत्र-साहित्य में आते हैं। संहिता में इसका आधार-भूत वातावरण (वेदी, ईंटें, माप-इकाइयाँ) मिलता है, पर गणितीय नियम सूत्र-ग्रन्थों में सूत्रबद्ध हुए। यह सूक्ष्म कालक्रम-भेद प्रायः लोकप्रिय लेखन में छूट जाता है।

7.2 खगोल और कालगणना

अग्निचयन के प्रतीकवाद में वर्ष के 360 दिन, 360 रात्रियाँ और 10,800 मुहूर्त (360×30) का उल्लेख शतपथ ब्राह्मण की परम्परा में मिलता है, जिसे 10,800 ईटों की संख्या से जोड़ा गया है [14,31]। सुभाष काक ने अपने खगोलीय अध्ययन में वेदी-संरचना और वर्ष के विभाजन के बीच संख्यात्मक सम्बन्ध खोजे और सुझाया कि यज्ञ-वेदी कालगणना का एक "स्थापत्य कोड" है [31,32]।

इस पक्ष के कुछ बिन्दु उल्लेखनीय हैं:

- **कालगणना की आवश्यकता:** यज्ञ में समय की शुद्धता (सूर्योदय, अमावस्या, पूर्णिमा, ऋतु-आरम्भ) अनिवार्य है। इससे पर्यवेक्षणात्मक खगोल की परम्परा पुष्ट हुई। दर्श-पौर्णमास की पूरी संरचना चन्द्र-कलाओं के आकलन पर निर्भर है।
- **संख्यात्मक प्रतीकवाद:** वेदी की संरचना में 360, 12, 24, 30 जैसी संख्याएँ प्रतिध्वनित होती हैं। इन्हें केवल संयोग नहीं माना जा सकता, किन्तु यह भी सिद्ध नहीं होता कि इसमें आधुनिक अर्थ में खगोलीय गणित छिपा था।
- **काक-परिकल्पना की सीमा:** काक की व्याख्याओं की आलोचना यह की जाती है कि उनमें बाद के ज्ञान को पाठ में पढ़ने की प्रवृत्ति (eisegesis) की सम्भावना है। इसलिए इसे "सुझावात्मक परिकल्पना" मानना उपयुक्त है, "सिद्ध निष्कर्ष" नहीं [32]।

7.3 पर्यावरण, वायु-शोधन और औषधीय धूम्र

यह वह क्षेत्र है जहाँ लोकप्रिय दावे सबसे अधिक हैं और प्रयोगात्मक साक्ष्य सबसे कम। यज्ञ में प्रयुक्त समिधाएँ (पलाश, खदिर, अश्वत्थ आदि), घृत और औषधीय द्रव्यों का दहन होता है। इस सन्दर्भ में कुछ बिन्दु वैज्ञानिक साहित्य के आधार पर कहे जा सकते हैं:

(क) औषधीय धूम्र और वायु-जीवाणु। नौटियाल, चौहान और नेने ने 2007 में *Journal of Ethnopharmacology* में प्रकाशित अपने अध्ययन में यह पाया कि औषधीय धूम्र (जिसमें पारम्परिक हवन-सामग्री जैसे पादप-द्रव्य सम्मिलित थे) के प्रयोग से बन्द कक्ष में वायुजनित जीवाणुओं की संख्या में उल्लेखनीय कमी आई [33]। यह अध्ययन एक प्रयोगात्मक निष्कर्ष है और इसकी पद्धति सीमित परिस्थितियों (निश्चित कक्ष, निश्चित द्रव्य-मिश्रण) पर आधारित थी। इसलिए इसे सम्पूर्ण यजुर्वेदीय यज्ञ का सामान्य प्रमाण मानना अनुचित है, पर यह एक गम्भीर प्रारम्भिक संकेत अवश्य है कि धूम्र-चिकित्सा की परम्परा के पीछे वास्तविक जैविक क्रिया हो सकती है।

(ख) यज्ञ में प्रयुक्त द्रव्य और दहन का रसायन। कोई भी बड़े पैमाने का दहन सूक्ष्म कणों (particulate matter) और कार्बन-मोनोऑक्साइड जैसी गैसों का उत्सर्जन भी करता है। अतः वैज्ञानिक ईमानदारी यह माँगती है कि लाभ के दावों के साथ सम्भावित हानियों का भी अध्ययन हो, विशेषकर बन्द स्थानों में। यह पक्ष लोकप्रिय साहित्य में प्रायः उपेक्षित है।

(ग) मन्त्र में निहित पर्यावरण-चेतना। पाठ-आधारित रूप से, वेदमन्त्रों में वनस्पति और जल के प्रति सम्मान स्पष्ट है (शान्तिपाठ, वा.सं. 36.17)। समिधाओं के लिए पवित्र वृक्षों का चयन और यज्ञ के सामूहिक रूप का सामाजिक प्रभाव पर्यावरण-नैतिकता के अध्ययन के लिए उपयोगी सामग्री देता है, यद्यपि इसे आधुनिक अर्थ में "पर्यावरण नीति" नहीं कहा जा सकता।

(घ) आकलन। इस क्षेत्र में शोध-साहित्य की स्थिति यह है कि (1) कुछ प्रारम्भिक प्रयोगात्मक अध्ययन सकारात्मक संकेत देते हैं, (2) बड़े नमूने, नियन्त्रित परिस्थिति और स्वतन्त्र प्रतिकृति (replication) वाले अध्ययन कम हैं, (3) कार्य-कारण सम्बन्ध का ठोस निर्धारण शेष है। अतः विवेकसम्मत निष्कर्ष यही है कि परिकल्पना रोचक है, पर अभी सिद्ध नहीं।

7.4 ध्वनि, मन्त्रोच्चारण और तंत्रिका-मनोविज्ञान

यजुर्वेद का पाठ केवल शब्दार्थ का विषय नहीं, उच्चारण का भी विज्ञान है। स्वर (उदात्त, अनुदात्त, स्वरित), मात्रा, बल और प्रयत्न की शुद्धता पर शिक्षा-ग्रन्थों में बल है। इसके आधुनिक अध्ययन दो दिशाओं में हुए हैं।

(क) प्रणव/ओम्-जप के शारीरिक-तंत्रिका प्रभाव। यद्यपि "ओम्" यजुर्वेद के विशिष्ट मन्त्र-पाठ का अंश मात्र है, उसका अध्ययन वैदिक ध्वनि-परम्परा के प्रभावों को समझने में सहायक है। तेल्स, नागरत्ना और नागेन्द्र ने दो शब्दांशों के मानसिक पुनरावर्तन के दौरान स्वायत्त तंत्रिका-तन्त्र में हुए परिवर्तनों की तुलना की, जिसमें सार्थक और निरर्थक शब्दांश के प्रभावों में अन्तर देखा गया [37]। कल्याणी और सहयोगियों ने कार्यात्मक चुम्बकीय अनुनाद इमेजिंग (fMRI) के आधार पर "ओम्" के उच्चारण के दौरान मस्तिष्क के कुछ भागों (जैसे लिम्बिक क्षेत्र) में निष्क्रियता (deactivation) की प्रारम्भिक रिपोर्ट दी [35]। कुमार और सहयोगियों ने प्राचीन ग्रन्थों और समकालीन विज्ञान के सन्दर्भ में ओम्-ध्यान की समीक्षा की [36]। इन सभी अध्ययनों की सीमा है कि इनके प्रतिभागी-नमूने छोटे थे और परिणाम प्रारम्भिक (pilot) थे, अतः इन्हें सावधानी से पढ़ना होगा।

(ख) वैदिक पाठ-परम्परा और स्मृति-संरचना। हार्टजेल और उनके सहयोगियों ने 2016 में *NeuroImage* में प्रकाशित अध्ययन में संस्कृत के वैदिक पण्डितों के मस्तिष्क की संरचना की तुलना नियन्त्रण-समूह से की। इसमें पाया गया कि लम्बे समय तक मौखिक वैदिक पाठों को कण्ठस्थ करने वाले पण्डितों के मस्तिष्क में भाषा, स्मृति और दृश्य-प्रणाली से जुड़े क्षेत्रों में संरचनात्मक भिन्नताएँ थीं [34]। यह अध्ययन विशेष महत्त्व का है क्योंकि यह वैदिक पाठ-परम्परा की स्मृति-तकनीक को न्यूरो-इमेजिंग के साक्ष्य से जोड़ता है। सम्बन्ध कारणात्मक सिद्ध नहीं, केवल सहसम्बन्धात्मक है, अर्थात् यह नहीं कहा जा सकता कि पाठ-प्रशिक्षण ही इन अन्तरों का कारण है (हो सकता है कि कुछ प्रवृत्तियाँ प्रारम्भ से रही हों)। फिर भी यह अध्ययन वैदिक मौखिक परम्परा के अद्वितीय संज्ञानात्मक पक्ष पर पहला ठोस न्यूरोवैज्ञानिक प्रकाश डालता है।

(ग) पाठ-सुरक्षा की तकनीकें। स्टाल ने अपने 1986 के शोध में इस बात पर बल दिया कि वैदिक मौखिक परम्परा की सटीकता असाधारण है, जो केवल कण्ठस्थ करने से नहीं, बल्कि जटा, घन आदि विकृति-पाठों की जटिल तकनीक से सम्भव हुई, जिनमें एक ही मन्त्र को अलग-अलग क्रम में बार-बार दोहराकर त्रुटि की सम्भावना न्यूनतम की जाती है [26]। यह वस्तुतः "त्रुटि-पहचान और संशोधन" की एक प्राचीन प्रणाली है, जिसकी तुलना आधुनिक सूचना-सिद्धान्त की अनावश्यकता (redundancy) की धारणा से की जा सकती है, यद्यपि यह तुलना रूपकात्मक ही मानी जानी चाहिए।

(घ) आकलन। ध्वनि-विज्ञान और स्मृति-प्रशिक्षण का पक्ष यजुर्वेदीय परम्परा का सबसे मौलिक और जीवित योगदान है। इसका साक्ष्य आधुनिक न्यूरो-इमेजिंग और भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन दोनों से प्राप्त होता है, यद्यपि निष्कर्ष अभी प्रारम्भिक हैं।

7.5 अनुष्ठान की संरचना और भाषा-विज्ञान: स्टाल का सिद्धान्त

स्टाल का "Rules Without Meaning" (अर्थहीन नियम) यजुर्वेदीय यज्ञ के अध्ययन में एक क्रान्तिकारी योगदान है [25]। उनका तर्क है कि वैदिक अनुष्ठान मुख्यतः "नियमबद्ध संरचना" है, जिसका अर्थ (semantics) गौण है, जैसे भाषा की व्याकरण-संरचना अर्थ से स्वतन्त्र होती है। इस दृष्टि से यज्ञ को एक "वाक्य-रचना" जैसा देखा जा सकता है, जहाँ क्रियाओं के क्रम, पुनरावृत्ति और अन्तःस्थापन (embedding) के नियम हैं, जो पाणिनि के व्याकरण की तरह औपचारिक संरचना दर्शाते हैं। इस दृष्टिकोण से मन्त्र भी प्रायः "अर्थ" की जगह "प्रयोग" के लिए हैं। यह विचार मीमांसा-परम्परा की उस पुरानी बहस से मिलता है जिसमें कहा गया कि वेदमन्त्र मुख्यतः विनियोग (कर्म में प्रयोग) के लिए हैं, न कि अर्थ-बोध मात्र के लिए।

स्टाल के इस मत की आलोचना भी हुई है। अनेक विद्वानों का कहना है कि वैदिक मन्त्रों में गहन अर्थ और काव्य-सौन्दर्य है, और उन्हें "अर्थहीन" कहना उचित नहीं होगा [43]। सम्भवतः अधिक सन्तुलित निष्कर्ष यह है कि अनुष्ठान में अर्थ और संरचना दोनों की भूमिका है। यह बहस अनुष्ठान को केवल आस्था नहीं, अध्ययन-योग्य औपचारिक प्रणाली के रूप में स्थापित करती है, जो इस शोध-पत्र की बुनियादी पूर्व-धारणा है।

8. सम्बन्धित शोध-समीक्षा: परिणाम और निष्कर्ष

यह खण्ड यजुर्वेदीय यज्ञ पर उपलब्ध प्रमुख शोध-धाराओं की समीक्षा करता है और प्रत्येक के परिणाम या निष्कर्ष का सार देता है।

8.1 भाषाशास्त्रीय और पाठ-आलोचनात्मक शोध

ग्रिफ़िथ (1899) ने शुक्ल यजुर्वेद का अंग्रेज़ी अनुवाद और सरल टिप्पणियाँ दीं, जिससे यह पाठ यूरोपीय और भारतीय दोनों पाठकों के लिए सुलभ हुआ [4]। कीथ (1914) ने तैत्तिरीय संहिता का अनुवाद और लम्बी भूमिका दी और इस पाठ को कृष्ण यजुर्वेद का प्रतिनिधि माना [5]। वेबर (1852) ने माध्यन्दिन और काण्व पाठों के साथ महीधर-भाष्य का सम्पादन किया और इस तरह वेद-पाठ की तुलनात्मक पद्धति की नींव रखी [6]। इन कार्यों का परिणाम यह रहा कि यजुर्वेद पहली बार तुलनात्मक-आलोचनात्मक रूप में उपलब्ध हुआ। सीमा यह है कि उनमें अनुवाद और भाष्य अक्सर औपनिवेशिक काल की दृष्टि से प्रभावित हैं, जिसमें वेदों को कभी-कभी "प्रारम्भिक" या "आदिम" चिन्तन कहा गया।

8.2 अनुष्ठान-सिद्धान्त पर शोध

ओल्डेनबर्ग (1894) और सिल्वैन लेवी (1898) ने वैदिक धर्म और ब्राह्मण-ग्रन्थों के बलि-सिद्धान्त पर मौलिक कार्य किया [18,19]। लेवी का यह प्रसिद्ध निष्कर्ष है कि ब्राह्मण-काल में यज्ञ की शक्ति इतनी बढ़ गई कि यज्ञ देवताओं से भी ऊपर स्थापित हो गया। हुबर्ट और मॉस (1964, मूल 1898) ने बलि की सार्वभौम संरचना (पवित्रीकरण, बलि-वध, पवित्र-निष्कासन) का सिद्धान्त दिया और वैदिक बलि को उसका आदर्श उदाहरण माना [20]। हीस्टरमैन (1993) ने इसके विपरीत यह मत रखा कि वैदिक यज्ञ एक "टूटी हुई दुनिया" के अन्तर्गत विकसित हुआ, जिसमें मूल रूप से यज्ञ प्रतिद्वन्द्विता और द्वन्द्व से जुड़ा था, जिसे बाद में शास्त्रीय श्रौत-यज्ञ में व्यवस्थित और "शान्त" रूप दिया गया [21]। स्मिथ (1989) ने अनुष्ठान में समानता (resemblance) और प्रतीकवाद की भूमिका का विश्लेषण किया [22]। इन कार्यों का समेकित परिणाम यह है कि यज्ञ को केवल "देवताओं को भोजन देने" की प्रक्रिया मानने की सरल दृष्टि अपर्याप्त सिद्ध हुई और उसे शक्ति, संरचना और समाज-निर्माण की प्रक्रिया के रूप में देखा जाने लगा।

8.3 प्रत्यक्ष-क्षेत्र अध्ययन और अनुष्ठान-संरचना

स्टाल का 1983 का दो खण्डों में प्रकाशित ग्रन्थ "Agni: The Altar of Fire" 1975 में केरल के पंजाल में हुए अग्निचयन का फ़िल्म, ध्वनि-अभिलेख और लिखित विवरण सहित प्रलेखन है [8]। इसका परिणाम यह रहा कि जो अनुष्ठान लगभग केवल पाठ में उपलब्ध माना जाता था, उसकी जीवित परम्परा का प्रत्यक्ष प्रलेखन सम्भव हुआ और यह पाया गया कि आधुनिक काल में भी नाम्बूद्री परम्परा में पाठ की सटीकता आश्चर्यजनक रूप से बनी हुई है। गोंडा (1980, 1977) ने घरेलू (गृह्य) अनुष्ठान और श्रौतसूत्र-साहित्य की विस्तृत सूची-समीक्षा दी [17,44]। भारतीय संस्कारों पर राजबली पाण्डेय के हिन्दी-अंग्रेज़ी अध्ययन (1969) ने यज्ञ के सामाजिक-संस्कारात्मक पक्ष का विश्लेषण किया, जिसके अनुसार यज्ञ का सम्बन्ध जन्म से मृत्यु तक के संस्कारों से जुड़ा रहा [45]।

8.4 गणित-इतिहास के शोध

थीबो (1875), दत्त (1932), सीडेनबर्ग (1962, 1978), सेन-बाग (1983) और स्टाल (1999) के शोधों ने शुल्बसूत्रों की ज्यामिति का विश्लेषण किया [9,10,27-30]। **परिणाम** यह है कि वेदी-निर्माण के लिए विकसित ज्यामितीय विधियाँ अत्यन्त परिष्कृत थीं, और $\sqrt{2}$ का सन्निकट मान, समकोण-रचना, क्षेत्र-रूपान्तरण जैसी पद्धतियाँ पाठ-प्रमाणित हैं। **विवाद** यह है कि क्या यह ज्यामिति यूनान से स्वतन्त्र विकसित हुई और क्या इसे "गणित" या केवल "कारीगरी-नियम" माना जाए। स्टाल का सुझाव है कि वैदिक और यूनानी ज्यामिति की प्रकृति ही भिन्न थी, अतः एक को दूसरे से "श्रेष्ठ" या "पूर्व" बताना अनुपयुक्त तुलना है [30]।

8.5 विज्ञान-सम्बन्धी अनुभवजन्य अध्ययन

पर्यावरण और जैव-विज्ञान में नौटियाल आदि (2007) का अध्ययन, और तंत्रिका-विज्ञान में हार्टजेल आदि (2016), कल्याणी आदि (2011) तथा तेलस आदि (1998) के अध्ययन इस श्रेणी में आते हैं [33-35,37]। इनका **समेकित परिणाम** यह है कि (क) कुछ पारम्परिक क्रियाओं के मापने योग्य शारीरिक-जैविक प्रभाव हो सकते हैं, (ख) वैदिक मौखिक-प्रशिक्षण मस्तिष्क की संरचना/क्रियाशीलता से जुड़ा प्रतीत होता है, (ग) किन्तु अधिकांश अध्ययन छोटे नमूने के हैं और विशेष रूप से "यजुर्वेदीय यज्ञ" की सम्पूर्ण प्रक्रिया की जाँच नहीं करते, केवल उसके किसी एक घटक (धूम्र, ध्वनि, पाठ) की।

8.6 खगोल-सम्बन्धी शोध

काक (1993, 2000) का शोध वेदी-संरचना और खगोलीय संख्याओं के सम्बन्ध पर आधारित है [31,32]। **परिणाम** यह कि वेदी-संख्याओं और वर्ष-चक्र में गूढ़ संगति की परिकल्पना प्रस्तुत हुई। **आलोचना** यह कि पाठ-प्रमाण के स्थान पर संख्यात्मक संयोग को अत्यधिक महत्त्व देने का खतरा बना रहता है। इसलिए इसे विवेकपूर्ण मूल्यांकन के साथ "प्रस्तावित परिकल्पना" के रूप में पढ़ा जाना चाहिए।

8.7 हिन्दी-संस्कृत शोध-परम्परा

हिन्दी में बलदेव उपाध्याय ने वैदिक साहित्य को सांस्कृतिक सन्दर्भ में प्रस्तुत किया और यज्ञ को वैदिक संस्कृति की धुरी कहा [3]। सातवलेकर के भाष्य ने हिन्दी पाठकों तक यजुर्वेद पहुँचाया और मन्त्रों के व्यावहारिक-वैज्ञानिक अर्थ पर बल दिया [11]। दयानन्द सरस्वती ने यज्ञ को वैदिक धर्म का मूल बताया और मूर्ति-पूजा के स्थान पर यज्ञ को केन्द्र में रखा, जिसका आर्यसमाज पर दूरगामी प्रभाव रहा [23]। इस हिन्दी-संस्कृत धारा का **परिणाम** यह रहा कि यज्ञ-विषयक ज्ञान का जन-सुलभ प्रसार हुआ। इसकी **सीमा** यह है कि इस धारा में कभी-कभी पाठ-विश्लेषण की अपेक्षा आस्था-आधारित पुनर्व्याख्या हावी हो जाती है, और आधुनिक वैज्ञानिक तुलना में अतिरंजना की सम्भावना रहती है।

9. तुलनात्मक अध्ययन: अन्य प्राचीन यज्ञ/बलि परम्पराओं से

9.1 वैदिक और ईरानी (अवेस्ता) परम्परा

वैदिक और प्राचीन ईरानी धर्म का स्रोत सामान्यतः एक साझा भारत-ईरानी पृष्ठभूमि माना जाता है। मेरी बॉयस ने जरथुस्त्री परम्परा के अनुष्ठानों (यस्न) का विस्तृत अध्ययन किया [39] और मालन्द्रा ने प्राचीन ईरानी धर्म का परिचय दिया [40]। यस्न में भी अग्नि का केन्द्रीय स्थान है और हाओम (वैदिक सोम का सजातीय शब्द) का रस अर्पित होता है। इस आधार पर दोनों परम्पराओं में **समानताएँ** ये हैं: अग्नि की पवित्रता, पेय-अर्पण (सोम/हाओम), मन्त्र-पाठ का महत्त्व और पुरोहित-वर्ग की भूमिका। **भिन्नताएँ** भी स्पष्ट हैं। वैदिक

यज्ञ में देव-केन्द्रित बहुदेववाद और अत्यन्त विस्तृत क्रिया-तन्त्र है, जबकि जरथुस्त्री परम्परा में द्वैतवादी नैतिक सन्दर्भ (अहुर मज़्दा बनाम अंग्र मैन्थु) और अपेक्षाकृत अल्प-विस्तृत अनुष्ठान है [39,40]। यह तुलना दर्शाती है कि अग्नि-केन्द्रित पवित्र-कर्म आर्य-परम्परा का एक प्राचीन तत्त्व है, किन्तु उसका दार्शनिक विकास दोनों शाखाओं में भिन्न दिशाओं में हुआ।

9.2 वैदिक और यूनानी परम्परा

वाल्टर बर्कर्ट ने अपने ग्रन्थ "Homo Necans" में यूनानी बलि-अनुष्ठान का विश्लेषण किया और इसे शिकार-हिंसा के अनुष्ठानीकरण से जोड़ा [38]। यूनानी बलि में पशु का भोज-विभाजन (देवताओं को हड्डियाँ और वसा, मनुष्यों को मांस) एक विशिष्ट संरचना है। वैदिक यज्ञ में भी हवि का देव-भाग और यजमान-भाग होता है, पर उसकी संरचना कहीं अधिक जटिल और मन्त्र-आधारित है। एक प्रमुख अन्तर यह है कि वैदिक यज्ञ में मन्त्र और शब्द की शुद्धता का ऐसा असाधारण महत्त्व है जो यूनानी अनुष्ठान में उतना केन्द्रीय नहीं दिखता [25,38]। दूसरा अन्तर यह है कि वैदिक यज्ञ के कारण ज्यामिति, कालगणना और भाषा-विश्लेषण जैसे बौद्धिक-तकनीकी विकास हुए [8,30]।

9.3 वैदिक और इब्रानी (लेवीय) बलि-व्यवस्था

जैकब मिल्ग्रोम ने लेवीय ग्रन्थ की बलि-प्रणाली का विश्लेषण किया, जिसमें पाप-निवारण (हत्ताआत) और शुद्धि पर विशेष बल है [41]। वैदिक यज्ञ में भी प्रायश्चित्त की व्यवस्था है, पर उसकी मूल प्रेरणा प्रायः पापशोधन से अधिक "ऋत की रक्षा और कामना-पूर्ति" है। दोनों में मनुष्य और दिव्य के बीच सम्बन्ध का माध्यम बलि है, पर लेवीय व्यवस्था एकेश्वरवादी और नैतिक-वैधानिक ढाँचे में है, जबकि वैदिक व्यवस्था बहुदेववादी-ब्रह्माण्डीय ढाँचे में। इसके अतिरिक्त, वैदिक परम्परा में यज्ञ का क्रमिक आन्तरिकीकरण (ज्ञानयज्ञ, तपोयज्ञ, जपयज्ञ जैसे रूप) आगे चलकर उपनिषदों और गीता में स्पष्ट दीखता है [24]।

9.4 तुलनात्मक निष्कर्ष

तीनों परम्पराओं के अध्ययन से कुछ सार्वभौम तत्त्व और कुछ विशिष्ट तत्त्व स्पष्ट होते हैं:

- **सार्वभौम तत्त्व:** दिव्य-मानव सम्बन्ध का माध्यम, अर्पण/त्याग की धारणा, पवित्र अग्नि या वेदी का केन्द्र, पुरोहित की विशेष भूमिका और सामाजिक समेकन का कार्य [20,38,41]।
- **वैदिक-यजुर्वेदीय विशिष्टता:** मन्त्र-उच्चारण की अत्यन्त कठोर शुद्धता, क्रियाओं की औपचारिक-नियमबद्ध संरचना [25], ज्यामिति-गणित का विकास [10,27], और दीर्घकालीन मौखिक-संरक्षण की जटिल तकनीक [26]।

यह तुलना बताती है कि यजुर्वेदीय यज्ञ की विशिष्टता उसकी "प्रौद्योगिकीय-बौद्धिक" जटिलता में है, केवल उसके धार्मिक होने में नहीं। इसी कारण इसका विज्ञान-सन्दर्भ में अध्ययन तर्कसंगत हो जाता है।

10. विभिन्न दृष्टिकोणों का विश्लेषण

यज्ञ के मूल्यांकन के लिए कम-से-कम छह दृष्टिकोण उपलब्ध हैं। प्रत्येक की अपनी शक्ति और सीमा है।

10.1 पारम्परिक याज्ञिक-मीमांसक दृष्टि

इस दृष्टि में यज्ञ स्वयं अपने में प्रयोजन है। वेद-मन्त्रों का विनियोग कर्म में है और फल "अपूर्व" (अदृष्ट शक्ति) के माध्यम से मिलता है। **शक्ति:** पाठ और प्रक्रिया की अद्भुत निष्ठा। **सीमा:** इसके दावे अनुभवजन्य परीक्षण से परे (अदृष्ट) रहते हैं, इसलिए वैज्ञानिक रूप से न सिद्ध होते हैं न खण्डित।

10.2 सुधारवादी-आध्यात्मिक दृष्टि

दयानन्द सरस्वती और श्री अरविन्द इसके प्रतिनिधि हैं। दयानन्द ने यज्ञ को वेदोक्त धर्म का आधार बताया और जटिल कर्मकाण्ड के स्थान पर सरल हवन तथा सामाजिक सुधार पर बल दिया [23]। अरविन्द ने वेद-मन्त्रों को आन्तरिक आध्यात्मिक अनुभव के प्रतीक के रूप में देखा [24]। **शक्ति:** यज्ञ को नैतिक-आध्यात्मिक अर्थ देना और जनसुलभ बनाना। **सीमा:** इसमें प्रायः ऐतिहासिक-भाषाशास्त्रीय कठोरता कम हो जाती है, और मन्त्रों के अर्थ पर व्यक्तिगत व्याख्या हावी हो सकती है।

10.3 पाश्चात्य भाषाशास्त्रीय-ऐतिहासिक दृष्टि

इसमें ग्रिफ़िथ, कीथ, ओल्डेनबर्ग, लेवी आदि आते हैं [4,5,18,19]। **शक्ति:** पाठ-आलोचना, कालक्रम-निर्धारण, तुलनात्मक भाषा-विज्ञान। **सीमा:** प्रारम्भिक विद्वानों में औपनिवेशिक पूर्वाग्रह और यज्ञ को "निरर्थक कर्मकाण्ड" मानने की प्रवृत्ति देखी गई।

10.4 समाज-मानवशास्त्रीय दृष्टि

हुबर्ट-मॉस, हीस्टरमैन, स्मिथ और जिरार्ड इस श्रेणी में हैं [20-22,42]। **शक्ति:** यज्ञ को सामाजिक संरचना, हिंसा, शक्ति और समेकन के सन्दर्भ में समझने की क्षमता। **सीमा:** सार्वभौम सिद्धान्त कभी-कभी वैदिक विशिष्टताओं को अनदेखा कर देते हैं।

10.5 औपचारिक-संरचनावादी दृष्टि

स्टाल इसके प्रतिनिधि हैं [8,25]। **शक्ति:** यज्ञ को अध्ययन-योग्य नियमबद्ध प्रणाली के रूप में स्थापित करना और प्रत्यक्ष क्षेत्र-कार्य के साथ पाठ का समन्वय। **सीमा:** अर्थ-पक्ष का अवमूल्यन और वैदिक धार्मिक अनुभव की उपेक्षा का आरोप।

10.6 विज्ञान-इतिहास और अनुभवजन्य वैज्ञानिक दृष्टि

इसमें दत्त, सीडेनबर्ग, सेन-बाग, काक, नौटियाल, हार्टजेल आदि आते हैं [9,10,27,31-34]। **शक्ति:** सत्यापन-योग्य दावे, मापन और प्रकाशित समीक्षा। **सीमा:** प्रयोगात्मक अध्ययन प्रायः यज्ञ के एक घटक तक सीमित हैं, और पाठ-आधारित खगोल-गणित की कुछ व्याख्याएँ अनुमानात्मक हैं।

10.7 समेकित विश्लेषण

इन दृष्टिकोणों की तुलना से यह स्पष्ट होता है कि कोई एक दृष्टि यज्ञ की सम्पूर्णता को व्याख्यायित नहीं कर सकती। यज्ञ एक साथ:

- पाठ है (भाषाशास्त्रीय दृष्टि),
- कर्म-प्रणाली है (औपचारिक-संरचनावादी दृष्टि),

- सामाजिक संस्था है (मानवशास्त्रीय दृष्टि),
- आध्यात्मिक प्रतीक है (सुधारवादी-आध्यात्मिक दृष्टि),
- और ज्ञान-तन्त्र है, जिसमें ज्यामिति, कालगणना और स्मृति-तकनीक का विकास हुआ (वैज्ञानिक-ऐतिहासिक दृष्टि)।

अतः प्रामाणिक शोध वही है जो इन स्तरों में भेद रखकर प्रत्येक के साक्ष्य के अनुरूप ही निष्कर्ष निकाले।

11. आलोचनात्मक मूल्यांकन और सीमाएँ

पहली सीमा: कालक्रम की धुँधलाहट। यजुर्वेद, ब्राह्मण, श्रौतसूत्र और शुल्बसूत्र अलग-अलग कालों की रचनाएँ हैं। इनमें से सबका श्रेय "यजुर्वेद" को देना ऐतिहासिक रूप से अशुद्ध होगा [12]। संहिता मुख्यतः मन्त्र-संकलन है, जबकि गणितीय नियम सूत्र-साहित्य में और व्याख्यात्मक तन्त्र ब्राह्मणों में विकसित हुए।

दूसरी सीमा: अनुवाद-निर्भरता और भाष्य-भेद। एक ही मन्त्र के अर्थ में उव्वट-महीधर, सायण, दयानन्द और पाश्चात्य अनुवादकों में महत्वपूर्ण भेद है [4,6,23]। "वैज्ञानिक" अर्थ कभी-कभी उसी विशेष भाष्य पर टिका होता है जो स्वयं आधुनिक विज्ञान से प्रभावित है।

तीसरी सीमा: प्रयोगात्मक साक्ष्य की सीमित प्रकृति। उपलब्ध वैज्ञानिक अध्ययन छोटे पैमाने के, विशिष्ट परिस्थितियों में किए गए और प्रायः एकल-समूह वाले हैं [33-35,37]। यज्ञ के सम्पूर्ण पर्यावरणीय या स्वास्थ्य प्रभाव को स्थापित करने के लिए यादृच्छिक, नियन्त्रित, बहु-केन्द्रीय अध्ययन आवश्यक होंगे।

चौथी सीमा: कालानुक्रमिक अतिरंजना का खतरा। जब हम कहते हैं कि यजुर्वेद में "क्वांटम" या "नैनो" विज्ञान था, तो यह वेदों को आधुनिक विज्ञान से जोड़ने का उत्साह हो सकता है, पर यह बिना पाठ-प्रमाण के अकादमिक रूप से टिक नहीं पाता। इस शोध में केवल उन्हीं दावों को स्वीकार किया गया है जिनके लिए पाठ या प्रयोग का आधार उपलब्ध है।

पाँचवीं सीमा: हिंसा और अहिंसा का प्रश्न। पशु-यज्ञ, अश्वमेध और पुरुषमेध के वर्णन आधुनिक नैतिक चेतना के समक्ष असुविधाजनक प्रश्न उपस्थित करते हैं। जैन-बौद्ध परम्परा की आलोचना और आगे चलकर वैष्णव-परम्परा में पशुबलि का त्याग यह दर्शाता है कि भारतीय परम्परा स्वयं इन प्रश्नों से जूझती रही [15,21]। ईमानदार शोध को इस पक्ष का सामना करना चाहिए, बचना नहीं।

12. निष्कर्ष

इस अध्ययन के निष्कर्ष निम्नलिखित हैं:

1. **यजुर्वेद यज्ञ का व्यावहारिक ग्रन्थ है।** उसकी संरचना नित्य अग्निहोत्र से आरम्भ होकर सोमयाग, राजसूय, अग्निचयन और अश्वमेध जैसे विशाल यज्ञों से होती हुई ईशावास्य के अद्वैतवादी चिन्तन पर पहुँचती है। यह संरचना कर्म से ज्ञान की ओर एक बौद्धिक यात्रा दर्शाती है।
2. **यज्ञ की अवधारणा त्रिविध है** (देवपूजा, संगतिकरण, दान) और उसके नैतिक आधार "इदं न मम" तथा "तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः" जैसे सूत्रों में व्यक्त हैं। शान्तिपाठ और मैत्री-मन्त्रों में सामूहिक तथा पर्यावरणीय सामंजस्य की भावना स्पष्ट है।

3. वैज्ञानिक दृष्टि से सर्वाधिक सुदृढ़ योगदान ज्यामिति और मौखिक स्मृति-तकनीक में है। शुल्बसूत्रों में समकोण-रचना, कर्ण-सम्बन्ध, $\sqrt{2}$ का सन्निकट मान और क्षेत्र-रूपान्तरण की विधियाँ पाठ-प्रमाणित हैं [10,27]। वैदिक पाठ-परम्परा की त्रुटि-रहित संरक्षण-प्रणाली और उसके तंत्रिका-सम्बन्धी संकेत भी अनुसन्धान-योग्य विशिष्टता हैं [26,34]।
4. पर्यावरणीय और स्वास्थ्य-सम्बन्धी दावों के लिए प्रारम्भिक संकेत हैं, प्रमाण अभी पर्याप्त नहीं। औषधीय धूम्र और ध्वनि-जप के अध्ययन आशाजनक हैं, किन्तु उन्हें बड़े और नियन्त्रित अध्ययनों से सत्यापित किया जाना शेष है [33,35,37]।
5. खगोल-सम्बन्धी दावे सुझावात्मक हैं। वेदी-संख्याओं और कालगणना के सम्बन्ध पर काक जैसे विद्वानों की परिकल्पनाएँ रोचक हैं, पर उन्हें और कठोर पाठ-आलोचना की आवश्यकता है [31,32]।
6. तुलनात्मक दृष्टि से यजुर्वेदीय यज्ञ की विशिष्टता उसकी बौद्धिक-तकनीकी जटिलता में है। ईरानी, यूनानी और इब्रानी बलि-परम्पराओं में अग्नि, अर्पण और पुरोहित जैसे साझा तत्त्व हैं, पर मन्त्र-शुद्धता, नियमबद्ध संरचना और ज्यामिति-विकास वैदिक परम्परा को विशिष्ट बनाते हैं [25,38-41]।
7. प्रामाणिक शोध के लिए बहु-दृष्टि समन्वय आवश्यक है। भाषाशास्त्र, अनुष्ठान-सिद्धान्त, मानवशास्त्र, विज्ञान-इतिहास और अनुभवजन्य विज्ञान को एक-दूसरे का पूरक मानना होगा, विरोधी नहीं।

भावी शोध के लिए सुझाव:

- शुक्ल और कृष्ण यजुर्वेद की पाठ-परम्पराओं का तुलनात्मक, कम्प्यूटेशनल पाठ-विश्लेषण।
- यज्ञ-द्रव्यों और दहन-उत्पादों का आधुनिक रासायनिक विश्लेषण, जिसमें लाभ और जोखिम दोनों का आकलन हो।
- वैदिक पाठ-प्रशिक्षण के तंत्रिका-सम्बन्धी प्रभावों पर दीर्घकालीन (longitudinal) अध्ययन।
- हिन्दी और संस्कृत भाष्य-परम्परा का व्यवस्थित समीक्षात्मक संकलन, जिसमें पाठ-निष्ठा और व्याख्या-स्वातन्त्र्य का अन्तर स्पष्ट हो।

अन्ततः यज्ञ की परम्परा को एक अनुष्ठान-प्रधान, ज्ञान-गर्भित और समाज-निर्माणकारी संस्था के रूप में देखना सर्वाधिक उपयुक्त है। उसकी आस्थागत गरिमा और उसका अकादमिक अध्ययन-मूल्य दोनों तभी सुरक्षित रह सकते हैं, जब हम उसे न अन्धश्रद्धा से और न अन्ध-उपेक्षा से, बल्कि साक्ष्य-आधारित जिज्ञासा से देखें।

सन्दर्भ सूची

1. Winternitz M. A History of Indian Literature. Vol 1. Ketkar S, translator. Calcutta: University of Calcutta; 1927.
2. Macdonell AA. A History of Sanskrit Literature. London: William Heinemann; 1900.
3. Upadhyaya B. Vaidik Sahitya aur Sanskriti [वैदिक साहित्य और संस्कृति]. Varanasi: Sharada Mandir; 1958.
4. Griffith RTH. The Texts of the White Yajurveda. Benares: E.J. Lazarus; 1899.
5. Keith AB. The Veda of the Black Yajus School entitled Taittiriya Sanhita. Harvard Oriental Series, vols 18-19. Cambridge (MA): Harvard University Press; 1914.
6. Weber A. The White Yajurveda: The Vajasaneyi-Sanhita in the Madhyandina and Kanva-Sakha with the Commentary of Mahidhara. Berlin: F. Dümmler; 1852.
7. Kane PV. History of Dharmasastra. Vol 2, Part 2. Poona: Bhandarkar Oriental Research Institute; 1941.

8. Staal F. Agni: The Altar of Fire. 2 vols. Berkeley: Asian Humanities Press; 1983.
9. Seidenberg A. The ritual origin of geometry. Arch Hist Exact Sci. 1962;1(5):488-527.
10. Datta B. The Science of the Sulba: A Study in Early Hindu Geometry. Calcutta: University of Calcutta; 1932.
11. Satavalekar SD. Yajurveda Samhita [यजुर्वेद संहिता]. Paradi: Svadhyaya Mandal; 1957.
12. Witzel M. Vedas and Upanisads. In: Flood G, editor. The Blackwell Companion to Hinduism. Oxford: Blackwell; 2003. p. 68-98.
13. Macdonell AA, Keith AB. Vedic Index of Names and Subjects. 2 vols. London: John Murray; 1912.
14. Eggeling J, translator. The Satapatha-Brahmana according to the text of the Madhyandina School. Sacred Books of the East, vols 12, 26, 41, 43, 44. Oxford: Clarendon Press; 1882-1900.
15. Thite GU. Sacrifice in the Brahmana Texts. Poona: University of Poona; 1975.
16. Bodewitz HW. The Daily Evening and Morning Offering (Agnihotra) According to the Brahmanas. Leiden: Brill; 1976.
17. Gonda J. Vedic Ritual: The Non-Solemn Rites. Leiden: Brill; 1980.
18. Oldenberg H. Die Religion des Veda. Berlin: Wilhelm Hertz; 1894.
19. Lévi S. La doctrine du sacrifice dans les Brâhmanas. Paris: Ernest Leroux; 1898.
20. Hubert H, Mauss M. Sacrifice: Its Nature and Function. Halls WD, translator. Chicago: University of Chicago Press; 1964.
21. Heesterman JC. The Broken World of Sacrifice: An Essay in Ancient Indian Ritual. Chicago: University of Chicago Press; 1993.
22. Smith BK. Reflections on Resemblance, Ritual, and Religion. New York: Oxford University Press; 1989.
23. Sarasvati D. Rigvedadi-Bhashya-Bhumika [ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका]. Ajmer: Paropakarini Sabha; 1878.
24. Sri Aurobindo. On the Veda. Pondicherry: Sri Aurobindo Ashram; 1956.
25. Staal F. Rules Without Meaning: Ritual, Mantras and the Human Sciences. New York: Peter Lang; 1989.
26. Staal F. The fidelity of oral tradition and the origins of science. Amsterdam: North-Holland Publishing Company; 1986.
27. Sen SN, Bag AK. The Sulbasutras of Baudhayana, Apastamba, Katyayana and Manava, with Text, English Translation and Commentary. New Delhi: Indian National Science Academy; 1983.
28. Thibaut G. On the Sulvasutras. J Asiat Soc Bengal. 1875;44(3):227-275.
29. Seidenberg A. The origin of mathematics. Arch Hist Exact Sci. 1978;18(4):301-342.
30. Staal F. Greek and Vedic geometry. J Indian Philos. 1999;27(1-2):105-127.
31. Kak S. Astronomy of the Vedic altars. Vistas Astron. 1993;36(2):117-140.
32. Kak S. The Astronomical Code of the Rigveda. New Delhi: Aditya Prakashan; 2000.
33. Nautiyal CS, Chauhan PS, Nene YL. Medicinal smoke reduces airborne bacteria. J Ethnopharmacol. 2007;114(3):446-451.

34. Hartzell JF, Davis B, Melcher D, Miceli G, Jovicich J, Nath T, et al. Brains of verbal memory specialists show anatomical differences in language, memory and visual systems. Neuroimage. 2016;131:181-192.
35. Kalyani BG, Venkatasubramanian G, Arasappa R, Rao NP, Kalmady SV, Behere RV, et al. Neurohemodynamic correlates of 'OM' chanting: a pilot functional magnetic resonance imaging study. Int J Yoga. 2011;4(1):3-6.
36. Kumar S, Nagendra HR, Manjunath NK, Naveen KV, Telles S. Meditation on OM: relevance from ancient texts and contemporary science. Int J Yoga. 2010;3(1):2-5.
37. Telles S, Nagarathna R, Nagendra HR. Autonomic changes while mentally repeating two syllables: one meaningful and the other neutral. Indian J Physiol Pharmacol. 1998;42(1):57-63.
38. Burkert W. Homo Necans: The Anthropology of Ancient Greek Sacrificial Ritual and Myth. Bing P, translator. Berkeley: University of California Press; 1983.
39. Boyce M. Zoroastrians: Their Religious Beliefs and Practices. London: Routledge & Kegan Paul; 1979.
40. Malandra WW. An Introduction to Ancient Iranian Religion: Readings from the Avesta and the Achaemenid Inscriptions. Minneapolis: University of Minnesota Press; 1983.
41. Milgrom J. Leviticus 1-16: A New Translation with Introduction and Commentary. Anchor Bible, vol 3. New York: Doubleday; 1991.
42. Girard R. Violence and the Sacred. Gregory P, translator. Baltimore: Johns Hopkins University Press; 1977.
43. Jamison SW, Brereton JP. The Rigveda: The Earliest Religious Poetry of India. 3 vols. New York: Oxford University Press; 2014.
44. Gonda J. The Ritual Sutras. Wiesbaden: Otto Harrassowitz; 1977.
45. Pandey RB. Hindu Samskaras: Socio-Religious Study of the Hindu Sacraments. 2nd ed. Delhi: Motilal Banarsidass; 1969.